अंक २०



संस्कृत-पाठ-माला ।

[संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

भाग २० वाँ ।

—०—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि. सूरत)

—०—

तृतीय वार

—०—

संवत् २००६, शके १८७१, सन १९४९

मूल्य ८ आने

स्वरचिह्न

वेदमें अक्षरोंके नीचे और ऊपर स्वरचिह्न दिये जाते हैं, उनको स्वर कहते हैं। इन स्वरोंके कुछ नियम इस पुस्तकमें दिये हैं। यदि पाठक इन नियमोंको ध्यानसे पढेंगे तो उनको स्वर किस नियमसे दिये जाते हैं और स्वर कैसे बदलते हैं, इस बातका पता लग जायगा। स्वरका प्रकरण बडा लंबा चौडा है, परंतु इस भागको संक्षेपसे यहां दिया है। इसलिये इसके मननसे पाठक स्वरके विषयका आवश्यक ज्ञान समझ सकते हैं।

स्वाध्याय-मण्डल
'आनंदाश्रम'
पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष— स्वाध्याय-मंडल

मुद्रक तथा प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, बी. ए.
भारत-मुद्रणालय 'आनंदाश्रम' पारडी [जि० सूरत]



संस्कृत-पाठ-माला ।

भाग २०वाँ

पाठ १

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये—

(१)

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।

अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥

(वा० य० ३६।२०)

हे ईश्वर ! (हरसे) दुष्टताका हरण करनेवाले, (शोचिषे) पवित्रता बढानेवाले और (अर्चिषे) तेज फैलानेवाले (ते नमः, ते नमः) तेरे लिये हमारा नमस्कार (अस्तु) है । (ते हेतयः) तेरे शस्त्र (अस्मत् अन्यान्) हमको छोडकर अन्योंको अर्थात् धर्मके शत्रुओंको (तपन्तु) ताप देते रहें । (पावकः) पवित्रता करनेवाला तू ईश्वर (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (शिवो भव) कल्याणकारी हो ॥

परमेश्वर दुष्टता दूर करनेवाला, पवित्रता बढानेवाला और प्रकाशको फैलानेवाला है, इसलिये उसकोही नमन करना हम सबको उचित है ।

❀

प्रत्येक मनुष्य उसीकी पूजा करे । हम सबका आचरण ऐसा धर्मनियमोंसे युक्त हो कि जिससे हमपर ईश्वरका शासक दण्ड न गिरे । वह दण्ड उनपर गिरे कि जो अधर्माचरण करते हों । पवित्रता बढानेवाले ईश्वरकी दया हम सबपर बरसती रहे ।

(२)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ (वा० य० ३६।२१)

हे ईश्वर ! (विद्युते ते नमः अस्तु) विशेष तेजःस्वरूप तेरे लिये हमारा नमस्कार हो । (स्तनयित्नवे ते नमः) महान् शब्द करनेवाले तेरे लिये मेरा नमस्कार हो । हे (भगवन्) ऐश्वर्यसंपन्न ईश्वर ! (यतः) जिस स्थानसे तू (स्वः) अपने निजानंदमें (सं ईहसे) सम्यक् चेष्टा करता है, वहां (ते नमः अस्तु) तेरे लिये मेरा नमस्कार हो ॥

ईश्वर परम तेजस्वी है, महान् ऐश्वर्यसंपन्न है और शब्दका प्रवर्तक भी है, तथा वह अखंड आनंदमय है । इसलिये उसको नमस्कार करना चाहिये, उसीकी पूजा करनी चाहिये । और उसीकी भक्ति करनी चाहिये ।

(३)

यतो-यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ (वा० य० ३६।२२)

हे ईश्वर ! (यतः-यतः) जिस जिस स्थानसे तू (सं ईहसे) प्रेरणा करता है (ततः) उस उस स्थानसे (नः अभयं कुरु) हम सबका अभय कर । (नः प्रजाभ्यः) हमारी सब प्रजाओंके लिये (शं अभयं) कल्याण-कारक अभय (कुरु) कर और (नः पशुभ्यः) हम सबके पशुओंके लिये भी अभय दान कर ।

ईश्वर हम सबको अभय देवे, हमारी प्रजाओं और हमारे पशुओंको

भयरहित करे अर्थात् हम सबका पूर्ण कल्याण करे । वह तो सब प्रकारसे कल्याण करताही है । परंतु यहां यह प्रार्थना इसलिये है कि इस प्रकारकी प्रार्थना मनुष्य करें और उसकी निर्भयतामें सदा रहें ।

(४)

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥

(अथर्व० ११।२।१६)

(भवाय) सबके उत्पादक ईश्वरके लिये और (शर्वाय) सबका दुःख निवारण करनेवाले ईश्वरके लिये सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रिके समय और दिनके समय (नमः अकरं) नमस्कार करते हैं।

दिनमें प्रातःकाल, दोपहरके समय, सायंकाल और रात्रिमें सोते समय ईश्वरकी स्तुति, प्रार्थना उपासना भक्तिसे और प्रेमसे करनी चाहिये ।

(५)

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥

(ऋग्वेद १।८४।१२)

(स्वराज्यं अनु वस्वीः) स्वराज्य-प्राप्तिके अनुकूल व्यवहार करनेवाले (ताः प्रचेतसः) वह ज्ञानी जन (अस्य सहः) इस ईश्वरकी शक्तिका (नमसा सपर्यन्ति) नमस्कारोंसे पूजन करते हैं । तथा (अस्य पुरूणि व्रतानि) इसके विविध नियमोंका (सश्चिरे) पालन करते हैं, इसलिये कि उससे (पूर्वचित्तये) अपूर्व लाभ प्राप्त हो।

अपना अभ्युदय चाहनेवाले सब लोक परमेश्वरकी शक्तियोंका, उसके महान् कर्मोंका और उसके अनन्त यशका चिंतन करें और अपनी भक्तिसे उसकी पूजा करें। ऐसा करनेसेही उनको अपूर्व लाभ प्राप्त हो सकता है।

(६)

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥

(अथर्व० ६।४५।२)

हे (इन्द्र) प्रभो ! हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् ! (यत्) यदि (अपि मृषा चरामसि) असत्य आचरण हमसे हुआ हो, (दुरितात् अंहसः) तो उन सब पापोंसे (आंगिरसः प्रचेताः) विशेष ज्ञानी विद्वान् (नः पातु) हमको बचावे ।

इस जगत्‌का एकही प्रभु है, वह सर्वज्ञ है, वही सबसे श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। कोई भी मनुष्य उससे छिपकर कोई पाप कर नहीं सकता। इसलिये सबको उचित है कि वे उस ईश्वरकी भक्ति करें और श्रद्धासे उसकी प्रार्थना करें कि वह हम सबको ऐसी प्रेरणा करें कि हमसे कभी बुरा आचरण न हो और हम सब सदा पापसे बचते रहें।

सूचना

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके शब्दोंका अर्थ करें और शब्दार्थके अनुसार मनन करके मन्त्रका भावार्थ देखें। छोटेसे मन्त्रका भी भावार्थ बडा गंभीर हो सकता है, क्योंकि भावार्थमें एक एक शब्दके आशयका स्पष्टीकरणके साथ तात्पर्य लेना होता है। इस ढंगसे अभ्यास करनेके पाठकोंको बडा लाभ होगा।

पाठ २

वैदिक स्वर

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥
(शिक्षा ११)

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन स्वर हैं और उच्चारणके लघु दीर्घ भेदसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ये भी तीन भेद होते हैं।

इनमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये स्वरके भेद ऊपर नीचेके आघातके कारण बनते हैं और न्यून अधिक काल लगनेके कारण ह्रस्व दीर्घ प्लुत होते हैं।

ह्रस्व स्वर— अ, इ, उ, ऋ, ऌ।
दीर्घ स्वर— आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

ह्रस्व स्वरका काल एक, दीर्घ स्वरका काल दो और प्लुत स्वरका काल तीन मात्रा होता है। अर्थात् ह्रस्व स्वरही दो गुणा लंबा करनेसे दीर्घ और दीर्घ स्वर और अधिक बढानेसे प्लुत बनता है। देखिये—

ह्रस्व– हे राम–।
दीर्घ– हे रामाऽ–ऽ–।
प्लुत– हे रामाऽ–ऽ–ऽ।

एकही अकार दो गुणा और तीन गुणा लंबा करनेसे दीर्घ और प्लुत क्रमशः होता है। इसी प्रकार अन्य स्वरोंके विषयमें समझना योग्य है।

दूसरे भी कारणोंसे ह्रस्व स्वरको दीर्घत्व अथवा गुरुत्व प्राप्त होता है, उसके कारण ये हैं—

१ यदि ह्रस्व स्वर अनुस्वारयुक्त होगा तो वह दीर्घ या गुरु समझा जाता है। जैसा- रामं, इसमें अन्त्य अकार गुरु है।

२ यदि ह्रस्व स्वर विसर्गयुक्त हो तो वह गुरु समझा जाता है। जैसा- रामः, इसमें विसर्ग पूर्वका अकार गुरु है।

३ संयुक्त अक्षरके पूर्वका ह्रस्व स्वर दीर्घ या गुरु माना जाता है, जैसा इन्द्र, इसमें न्द्र अक्षर आगे आनेके कारण इसके पूर्व ह्रस्व इकार दीर्घ या गुरु माना जाता है।

४ इस नियममें अपवाद — प्र और ह्र इन दो संयुक्त अक्षरोंके पूर्वका ह्रस्व स्वर विकल्पसे दीर्घ समझा जाता है। अर्थात् इसको ह्रस्व स्वर भी कह सकते हैं और आवश्यकता होनेपर दीर्घ भी कह सकते हैं।

५ पद्यमें चरणके अन्तमें यदि ह्रस्व स्वर आगया तो वह दीर्घसदृश समझा जाता है।

इस प्रकार ह्रस्व स्वर भी परिस्थितिके अनुसार दीर्घवत् समझे जाते हैं। ह्रस्वकी एक मात्रा, दीर्घकी दो मात्राएं और प्लुतकी तीन मात्राएं होती हैं। छंदकी रचना करनेके लिये इन मात्राओंकी गिनती करनेकी आवश्यकता होती है।

दूसरेको पुकारनेके समय प्रायः प्लुत स्वरका उच्चारण होता है। जैसा- हे रामाऽ-ऽ-ऽ। ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरोंके प्रयोग शब्दोंमें सर्वत्र होते हैं। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरोंका उच्चार केवल स्वरोच्चारके कालकी लंबाईके साथ संबंधित है, यह बात यहां पाठकोंके ध्यानमें आगई होगी।

इससे पूर्व यह बतायाही है कि स्वरोंके उच्च, नीच और संयुक्त आघातसे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर होते हैं, अर्थात् ये स्वर आघातके हैं। वैदिक भाषा इस समय प्रचलित नहीं है, इसलिये इन आघातोंका वास्तविक स्वरूप हम जान नहीं सकते, तथापि प्रायः संपूर्ण भाषाओंमें न्यूनाधिक प्रमाणसे ये आघात रहतेही हैं। अंग्रेजी भाषामें शब्दोंके विशेष

स्वराक्षरपर दबाव होता है और कईयोंपर नहीं होता है। भाषामें भी वैसाही है। देखिये—

'यह बात ऐसीही है।' इसमें 'ही' पर आघात या दबाव है। प्रायः ये दबाव भिन्न भिन्न भाषामें भिन्न भिन्न रीतिसे होते हैं। परन्तु होते हैं इसमें संदेह नहीं है।

वेदमंत्रोंमें ये आघात अथवा दबाव अक्षरोंके नीचे और ऊपर खडी या तेढी लकीरोंसे बताये जाते हैं, तथा अन्य चिह्न भी बहुतही रहते हैं, जो वाजनेयी संहिताके मंत्रोंमें प्रसिद्ध हैं। देखिये—

पुवित्रेस्त्थोवैष्ण्णुव्योसवितुर्वः प्प्रसुवऽउत्त्पुंनामयच्छिद्द्रेणपुवित्रेणसूर्य्यस्यरुश्मिभिः ॥ देवीरापोऽअग्ग्रेगुवोऽअग्ग्रेपुवोग्ग्रऽइममुद्यय्ज्ञन्नय तागग्रेयुज्ञपतिᳪसुधातुंय्युज्ञपतिन्देवुयुवंम ॥ १२ ॥

इसमें पाठक देख सकते हैं कि स्वरोच्चार करनेके कितने चिह्न इसमें लिखे गये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद मंत्रोंके उच्चारके चिह्न भिन्न भिन्नही होते हैं, परन्तु यहां सब स्वरोंका विचार करना नहीं है, प्रत्युत केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरचिह्नोंकाही विचार करना है। ये स्वरचिह्न महत्त्वके हैं और अन्य चिह्न गौण हैं।

इन वैदिक स्वरोंका उच्चारण भिन्न भिन्न रीतिसे होता है। अर्थात् उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंका उच्चार भिन्न भिन्न रीतिसे होता है। और यदि इन स्वरोंके उच्चारणमें अशुद्धि हुई तो अर्थका अनर्थ भी होता है! इसलिये वेदोच्चार करनेके लिये इन स्वरोंके ठीक ज्ञान होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ (ऋ० १।१।१)

यह मंत्र देखिये । इसमें कई अक्षरोंके नीचे रेषा है, कईयोंके सिरपर रेषा है और कई अक्षर इस प्रकारकी रेषाओंसे रहित हैं । ये स्वर-चिह्न ऐसे क्यों आते हैं और इसका इन अक्षरोंसे क्या संबन्ध है, यह अब देखना है ।

यदि पाठक इस विषयके लेख आगेके पाठोंमें विशेष ध्यानसे पढेंगे तो उनको इस विषयका आवश्यक ज्ञान हो जायगा । इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस स्वरबोधक पाठोंका अध्ययन विशेष मननसे करें और लाभ उठावें ।



पाठ ३

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिए—

(१)

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥

(ऋग्वेद १।३६।१५)

हे (बृहत्-भानो) विशेष तेजस्वी ! हे (यविष्ठ्य) बलवान् (अग्ने) प्रकाशके देव ईश्वर ! (नः) हम सबको (राक्षसः) राक्षसोंसे (पाहि) बचाओ, (धूर्तेः अ- राव्णः) धूर्त स्वार्थियोंसे (पाहि) बचाओ, (जिघांसतः) हनन करनेवाले शत्रुसे (उत वा) तथा (रीषतः) विनाश करनेवाले शत्रु से (पाहि) हम सबको बचाओ ।

हे ईश्वर ! तू हम सबका बचाव क्रूर, राक्षस, दुष्ट, धूर्त, स्वार्थी आदिसे कर । तूही सबमें समर्थ, सबको तेज देनेवाला, सबका प्रेरक देव है । इस-लिये हम सबको अपने बचाव करनेके लिये समर्थ बनाओ और हमें तेजस्वी तथा यशस्वी कर ।

(२)

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु
चाकन ॥ (ऋग्वेद १।५१।८)

हे ईश्वर ! (आर्यान् विजानीहि) आर्योंको अर्थात् सत्य धर्मियोंको जान लो और (ये च दस्यवः) जो चोर हैं और घातक तथा हिंसक हैं उनको भी जान लो। (बर्हिष्मते) सत्कर्म करनेवालेके लिये (अ-व्रतान्) नियम तोडनेवालोंको (शासत् रंधय) शासन करते हुए दण्ड दो । तू (शाकी भव) समर्थ है । तथा तू (यजमानस्य चोदिता) कर्मण्य पुरुषको प्रेरणा करनेवाला है। (ते) ये (ता विश्वा) वे सब कर्म मैं (सधसादेषु) आनंद-प्राप्तिके पुरुषार्थमें (चाकन) चाहता हूं ।

हे ईश्वर ! हम सबमें जो सच्चे धर्मात्मा हैं और जो दुराचारी अधार्मिक हैं तथा नियमविरुद्ध आचरण करनेवाले हैं, उन सबको देख लो ! जो सज्जन हैं उनकी रक्षा कर और जो दुर्जन हों उनको दण्ड दो । तूही यह सब कर्म करनेके लिये समर्थ है। तूही सबको पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा देता है और तुम्हारेही कर्म हम सबको आनंद बढानेके कार्यमें सहाय-कारी होते हैं, इसलिये हम सब यह प्रार्थना कर रहे हैं।

ऐसे मंत्र मनुष्योंको धर्मके नियम बताते हैं । इसलिये इनसे जो बोध लेना उचित है वह यहां बताया जाता है-

(१) मनुष्य प्रथम सज्जन कौन हैं और दुर्जन कौन हैं इसका विचार

करे, (२) उनमें पुरुषार्थी कौन हैं और नियम तोडनेवाले कौन हैं यह देखे, (३) पश्चात् सज्जनोंकी रक्षा करे और दुर्जनोंको दण्ड देवे, (४) अपना सामर्थ्य बढावे, (५) सत्कर्मी पुरुषार्थियोंकी सहायता करे, (६) इस प्रकार व्यवहार करके जगत्में उन्नतिको प्राप्त हो।

इन आशयोंको प्रकट करनेवाले इस मंत्रके ये शब्द हैं—

(१) आर्यान् विजानीहि ये च दस्यवः, (२—३) बर्हिष्मते शासत्, अव्रतान् रन्धय, (४) शाकी भव, (५) यजमानस्य चोदिता, (६) ते ता विश्वा सधमादेषु चाकन।

पाठक इस रीतिसे मंत्रोंद्वारा अपने आचरणके लिये बोध प्राप्त करें। वेद-के मंत्रोंसे मनुष्योंके व्यवहारमें इस प्रकार बोध प्राप्त किया जा सकता है।

(३)

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये आन्ति वा केचिदत्रिणः।
अधा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

(ऋग्वेद १।९४।९)

हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले प्रभो! (वधैः) बधके साधनभूत शस्त्रोंसे (दुःशंसान्) दुष्ट (दूढ्यः) दुर्बुद्धिवालोंको (अप जहि) मार। जो (दूरे वा ये अन्ति वा) दूर हैं अथवा जो पास हों तथा (ये के च) जो कोई (अत्रिणः) सर्वभक्षक स्वार्थी हैं, उन सबको दण्ड दे। (अधा) पश्चात् (यज्ञाय गृणते) यज्ञ करनेवाले स्तोताको (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर। हे प्रभो! तेरी (सख्ये) मित्रतामें (वयं मा रिषाम) हम नष्ट नहीं होंगे।

हे ईश्वर! दुष्ट दुर्जनोंको, जो पास हों वा दूर हों, एकदम हमसे दूर कर दे। स्वार्थी खुदगर्ज केवल अपने पेट भरनेवालेही जो हैं उनको भी योग्य

दण्ड दे। तथा जो यज्ञकर्ता है उसकी उन्नतिका मार्ग सुगम कर। प्रभो! हम तुम्हारी मित्रतामें रहेंगे तो कभी नष्ट नहीं होंगे।

इस मंत्रसे व्यवहारका बोध इस प्रकार लिया जाता है—(१) दुष्टोंको अपराधके योग्य दण्ड देना चाहिये, (२) स्वार्थी स्वयंभोगी लोगोंको भी योग्य मार्गपर लाना चाहिये, (३) सत्कर्मी पुरुषार्थी जो हों उनकी उन्नतिका मार्ग सुगम करना चाहिये, (४) जो मनुष्य ईश्वरकी भक्ति करते हों उनका कभी नाश नहीं होगा।

यहां पाठक देख लें कि किस वेदवाक्यका कौनसा अर्थ होता है और उससे भावार्थ तथा बोध कैसा प्राप्त किया जाता है।

(४)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु॥

(ऋग्वेद ३। ५३। २१)

हे (इन्द्र) प्रभो! (अद्य) आजही (बहुलाभिः ऊतिभिः) अनेक रक्षणोंके साथ (नः) हमारा रक्षण कर। हे (मघवन्) धनवान्! हे शूर! हम सबको (श्रेष्ठाभिः) श्रेष्ठताओंके साथ (यात्) आगे (जिन्व) बढाओ। (यः नः द्वेष्टि) जो हम सबका द्वेष करता है उसको (अधरः सस्पदीष्ट) नीचे दबाओ। हम सब (यं उ द्विष्मः) जिसका द्वेष करते हैं (तं उ) उसको (प्राणः जहातु) प्राण छोड देवे।

हे ईश्वर! हमारी रक्षा कर। हे ऐश्वर्यमय प्रभो! हम सबको श्रेष्ठ गुणोंके साथ आगे बढाओ। जो अकेला हम सबका निष्कारण द्वेष करता है इस कारण जिसका हम सब द्वेष करते हैं वह हमसे दूर हो।

सूचना

पाठक यहां प्रथम मंत्रोंके पद पृथक् पृथक् करना सीखें। तत्पश्चात् उन पदोंका अन्वय करें। अन्वयके पश्चात् स्वयं अर्थ करनेका यत्न करें। और

यदि अर्थ नहीं हुआ तो फिर यहां दिया हुआ अर्थ पढकर ठीक अर्थ जानें। इस प्रकार प्रयत्नके साथ अध्ययन करेंगे तो वे बहुत उन्नति प्राप्त कर सकते हैं।

(५)

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम्॥ (ऋ० ५।९।६)

पदानि—तव। अहं। अग्ने। ऊतिभिः। मित्रस्य। च। प्रशस्तिभिः। द्वेषः+युतः। न। दुरिता। तुर्याम। मर्त्यानाम्।

अन्वयः-हे अग्ने! मित्रस्य तव प्रशस्तिभिः ऊतिभिः द्वेष+युतः न मर्त्यानां दुरिता तुर्याम।

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले ईश्वर! (मित्रस्य तव) तु जो मित्र उसकी (प्रशस्तिभिः ऊतिभिः) प्रशंसनीय रक्षणोंसे सुरक्षित होकर (द्वेषः+युतः न) द्वेषयुक्त लोगोंके समान अहित करनेवाले (मर्त्यानां) मनुष्योंके (दुरिता तुर्याम) दुष्ट कर्मोंसे दूर होकर सुरक्षित होंगे।

भावार्थ—हे ईश्वर! तू हमारा मित्र है और हमारा उत्तम संरक्षण करता है। तेरे अद्भुत संरक्षणसे युक्त होते हुए हम दुष्ट मनुष्योंके कर्तूतोंसे अपने आपको बचायेंगे, क्योंकि जो मनुष्य तेरी रक्षामें आगया है उसको डरानेवाला इस जगत् में कौन हो सकता है?

"अग्नि" शब्द आगका वाचक है, परन्तु अग्निको भी जिसने बनाया उसका भी नाम वेदमें "अग्नि" ही होता है।

"न" शब्द निषेध, नकार अर्थमें जाता है, परन्तु वेदमें 'इव' (समान) के अर्थमें आता है।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके अर्थ लिखनेका यत्न करें। मंत्रोंको कंठ भी करते जायँ। ऐसा करनेसे उनको बडा लाभ हो सकता है।

पाठ ४

वैदिक स्वर

वेदमंत्रोंके अक्षरोंके ऊपर और नीचे जो रेषाएं होती हैं उनको स्वर कहते हैं और उनके भेद उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं, इस विषयमें इससे पूर्व बताया जा चुका है। इन रेषाओंके अनुसार ऊपर अथवा नीचे आघात करके मंत्राक्षरोंका उच्चारण किया जाता है अथवा वैसा करना चाहिये, अन्यथा कभी कभी अर्थमें भी विपरीत परिणाम होता है।

उदात्त स्वरके लिये कोई चिह्न लिखा नहीं होता है अर्थात् साधारणतया स्वरचिह्नरहित अक्षर उदात्त समझना योग्य है। अनुदात्त स्वरका चिह्न अक्षरके नीचे रेषा '—' ऐसी दी जाती है और स्वरित चिह्नकी रेषा अक्षरके सिरपर ऊपर खडी '।' ऐसी रहती है। प्रायः प्रत्येक शब्दमें एक स्वरको छोडकर शेष सब स्वर अनुदात्त होते हैं—

अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ (अष्टाध्यायी ६।१।१५८)

' पदमें एक स्वरको छोडकर शेष स्वर अनुदात्त होते हैं। '

उदात्तका उच्च उच्चारण, अनुदात्तका नीच भागमें दबा हुआ उच्चारण और दोनोंका संयुक्त उच्चारण स्वरित स्वरका होता है—

उच्चैरुदात्तः। नीचैरनुदात्तः।
समाहारः स्वरितः ॥ (अष्टाध्यायी १।२।२९-३१)

' उदात्तका उच्चारण उच्च, अनुदात्तका नीच और स्वरितका उच्चारण मिश्रित होता है। '

यद्यपि ऐसा कहा है तथापि इससे सब बातोंका स्पष्टीकरण नहीं होता है। इसलिये इसका अधिक सुबोध विवरण करना चाहिये। पाठक स्मरण रखें कि वेदमंत्राका उच्चार करते समय इन स्वरचिह्नोंकी ओर ध्यान देना

अत्यंत आवश्यक है, अशुद्ध स्वरोच्चारसे मंत्रका भाव बदल जाता है, इस विषयमें व्याकरण शिक्षाका वचन देखनेयोग्य है—

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।(शिक्षा ४९)

' स्वर और वर्णके बुरे उच्चारके कारण मन्त्र अपने योग्य अर्थको प्रकट नहीं कर सकता । ' तथा—

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
तद्वद्वर्णाः प्रयोक्तव्याः (शिक्षा)

' शेरनी जैसी अपने बच्चोंको अपने जबडेमें पकडकर ले जाती है, परन्तु बच्चोंको दांत नहीं लगाती, उसी प्रकार संभालकर अक्षरोंका उच्चारण करना चाहिये । '

इत्यादि सब कथन इसलिये कहा गया है कि अक्षरोंका उच्चारण योग्य रीतिसे किया जावे । इसीलिये ऐसा कहा है कि योग्य गुरुके पाससे वेद सीखना चाहिये । स्वरका अशुद्ध उच्चार करनेसे ' इन्द्रशत्रु ' पदका बिलकुल उलटा अर्थ होता है, यह उदाहरण भी शिक्षाग्रन्थमें इसीलिये दिया गया है । इत्यादि वर्णनसे पाठक जान गये होंगे कि वैदिक भाषामें स्वरोंका महत्त्व कितना है ।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये स्वर अथवा इनके स्वरचिह्न केवल स्वरोंके साथही संबंध रखते हैं, इनका व्यंजनोंके साथ कोई संबन्ध नहीं है, यह बात पाठकोंको विदितही है ।

प्रत्येक शब्दमें एकसे अधिक उदात्त स्वर नहीं होता है, यह सर्वसाधारण नियम इससे पूर्व बतायाही है । सामासिक शब्दोंमें कई स्थानोंपर एकसे अधिक उदात्त स्वर रहते हैं । ये सब बातें ध्यानमें लेनेसे शब्दोंके नऊ भेद होते हैं, यह पाठकोंके ध्यानमें आ जायगा । ये भेद यहां दिये हैं–

(१) अन्तोदात्त– जिसमें अन्तभागमें उदात्त स्वर होता है । जैसा–
' अग्निः '

(२) आद्युदात्त–जिसमें प्रथम स्वर उदात्त होता है । जैसा– ' सोमः '

३ उदात्त– केवल उदात्त स्वरयुक्त शब्द। जैसा–' प्र '

४ अनुदात्त– अनुदात्त स्वरयुक्त शब्द। जैसा– ' वुः '

५ नीच स्वरित– निम्न स्वरसे उच्चारा जानेवाला स्वरित स्वरवाला शब्द। जैसा– ' वीर्यँ '

६ मध्योदत्त– मध्य स्वर जिसमें उदात्त होता है। जैसा, ' हुविषा '

७ स्वरित – उदात्त और अनुदात्त इन दोनों स्वरोंके धर्मोंका संयोग जिसमें होता है, ऐसे स्वरयुक्त शब्द। जैसा, ' स्व '

८ द्व्युदात्त – जिसमें दो उदात्त स्वर होते हैं। जैसा, ' बृहुस्पतिः '

९ त्र्युदात्त–जिसमें तीन उदात्त स्वर होते हैं। जैसा, ' इन्द्राबृहुस्पती '

अनुदात्तके नीचे '—' ऐसी रेषा होती है, स्वरितके शिरपर '।' ऐसी खडी रेषा होती है और उदात्तके लिये कोई चिह्न नहीं होता है।

इनमें स्वरित स्वरके बहुतसे भेद हैं और उनके नाम भी प्रत्येक भेदके लिये अलग अलग हैं। जैसा– एकश्रुति, प्रचय, सन्नतर, अनुदात्ततर इत्यादि स्वरित स्वरके अनेक भेद हैं। इन सब स्वरोंके विषयमें प्रथमतः सामान्य नियम बताकर पश्चात् विशेष स्पष्टीकरण करेंगे।

किस शब्दमें कौनसा स्वर उदात्त, कौनसा अनुदात्त और कौनसा स्वरित हो, इस विषयमें परिपाठीकाही नियम सर्वतोपरि शिरोधार्य होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। तथापि वैय्याकरणी लोगोंने इस विषयका सूक्ष्म निरीक्षण करके कुछ नियम बनाये हैं। इन नियमोंको अपवाद हैं, तथापि कुछ साधारण दृष्टिके लिये ये नियम पर्याप्त हैं—

१ नियम पहिला— शब्दके एक स्वरको छोडकर शेष स्वर अनुदात्त होते हैं।

२ नियम दूसरा— शब्दमें यदि एकही स्वर होगा तो वह स्वर उदात्त रहता है। जैसा– ' गौः, ग्मा, क्ष्मा, भूः, जाः, शं, प्सु, धीः, आ, भाः, कः, यः, मा, तत्, यत्, ये ' इत्यादि शब्द एक स्वरवाले हैं, इसलिये इनका स्वर उदात्त है।

इस नियमका अपवाद यह है कि अस्मत् और युष्मत् शब्दके जो रूप " मा, त्वा, ते, मे, नः, वः " इत्यादि होते है, उनमें एक स्वर होनेपर भी ये अनुदात्त हैं । तथा " चित्, इ, सीं, स्वः " इत्यादि अव्यय यद्यपि एक स्वरवाले हैं, तथापि ये अनुदात्त हैं । तथा " स्वः " इत्यादि एक स्वरवाले शब्द स्वरित हैं । इन अपवादोंको छोड दिया जाय, तो उक्त नियम बडे व्यापक समझनेयोग्य हैं । यहांतक हमने एक स्वरवाले शब्दोंका विचार किया, अब दो स्वर अथवा अधिक स्वरवाले शब्दोंका विचार करना है । इस विचारसे पूर्व कुछ वैदिक शब्दसिद्धिके नियम ध्यानमें धरने चाहिये-

१. निरुक्तकार तथा कई व्याकरण-शास्त्रज्ञ विद्वान् मानते हैं कि वेदके शब्द यौगिक हैं अर्थात् धातुसे प्रत्यय लगकर बने हैं । " नाम च धातु-जमाह ।" अर्थात् नाम धातुसे बने हैं । जैसा अग्नि शब्द " अग् " धातुसे " नि " प्रत्यय लगकर तथा वह्नि शब्द " वह् " धातुसे " नि " प्रत्यय लगकर बना है । इसी प्रकार अन्य शब्द अन्य धातुओं और अन्य प्रत्ययोंके योगसे बने हैं ।

इससे अनुमान हो सकता है कि धातु और प्रत्यय इनके स्वरका अनुसंधान करनेसे शब्दका स्वर निश्चित हो सकता है । बहुत अंशमें यह सत्य है। यद्यपि इस नियमको भी बहुत अपवाद हैं, तथापि यह सर्व-साधारण नियम माना जा सकता है । भगवान् पाणिनि मुनिने धातुपाठमें धातुके स्वर दिये हैं और व्याकरणमें प्रत्ययोंके स्वर भी दिये हैं । यदि धातु और प्रत्ययके स्वर समझमें आ गये, तो उनसे बननेवाले पदके स्वर समझमें आ सकेंगे, परंतु इसके लिये भी बडे अपवादक नियम हैं, उनका विचार आगे करेंगे ।

पाठ ५

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये-

(१)

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥

(ऋग्वेद ६।१।८)

पदानि—विशां । कविं । विश्पतिं । शश्वतीनां । नि-तोशनं । वृषभं । चर्षणीनां । प्रेति-इषणिं । इषयन्तं । पावकं । राजन्तं । अग्निं । यजतं । रयीणाम् ॥

अन्वयः—शश्वतीनां विशां कविं विश्पतिं नितोशनं चर्षणीनां वृषभं प्रेतीषणिं इषयन्तं पावकं रयीणां यजतं राजन्तं अग्निं (स्तुमः) ॥

अर्थ—(शश्वतीनां विशां कविं) शाश्वत प्रजाओंका कवि अर्थात् वाणीका प्रेरक, (विश्-पतिं) प्रजापालक, (नि़ऽतोशनं) शत्रुनाशक, (चर्षणीनां वृषभं) मनुष्योंके बलोंका वर्धक, (प्रेतीषणिं) प्रेरक, (इषयन्तं) अन्नादिकी सिद्धता करनेवाला, (पावकं) पवित्रता करनेवाला, (रयीणां यजतं) धनोंका दाता (राजन्तं अग्निं) प्रकाशमय तेजके देवकी हम प्रशंसा करते हैं ॥

भावार्थ—अग्निको भी उष्णता देनेवाला ईश्वर है, वह सब प्रजाओंको वाक्शक्ति देता है, वही सबका पालनकर्ता है, वही दुष्टोंको दूर करता है, वही मनुष्योंके बलोंकी वृद्धि करता है, सबको उन्नतिके मार्गपर चलाता और सबको अन्न आदि देता है, वही सबकी पवित्रता करता है और सबकी शोभा बढाता है। वही एक देव हम सबको नमस्कार करने-योग्य है ।

(२)

नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ (ऋ० ६।१४।३)

पदानि- नाना । हि । अग्ने । अवसे । स्पर्धन्ते । रायः । अर्यः । तूर्वन्तः । दस्युं । आयवः । व्रतैः । सीक्षन्तः । अव्रतम् ॥

अन्वयः- अग्ने ! अर्यः नाना रायः अवसे स्पर्धन्ते । आयवः दस्युं तूर्वन्तः व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः ॥

अर्थ- हे (अग्ने) तेजस्विताके देव ! (अर्यः) शत्रुके (नाना रायः) नाना प्रकारके धन (अवसे स्पर्धन्ते) अपनी रक्षाके लिये बडी स्पर्धा कर रहे हैं । (आयवः) मनुष्य (दस्युं) शत्रुको (तूर्वन्तः) नष्ट करते हुए अपने (व्रतैः) व्रताचरणोंसे (अ-व्रतं) धर्मनियमोंका पालन न करने-वाले मनुष्यको (सीक्षन्तः) पराभूत करते हुए आगे बढते हैं ।

भावार्थ- हे ईश्वर ! शत्रुके नाना प्रकारके धन अपने बचावके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु उनका प्रयत्न अब निष्फल है, क्योंकि हमारे मनुष्य शत्रुका पराभव करते हुए अपने शुद्ध धर्माचरणोंसे अधार्मिकोंको हटाते हैं। अर्थात् हमारे नियम पालन करनेवाले लोगोंके सामने शत्रु ठहर नहीं सकते । हे ईश्वर ! यह तुम्हारी हमपर बडी कृपा है ।

(३)

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ (ऋग्वेद ६। १६।२९)

पदानि- सु-वीरं । रयिं । आ-भर। जातवेदः । वि-चर्षणे । जहि । रक्षांसि । सुक्रतो ॥

अन्वयः— हे जातवेदः विचर्षणे ! सु-वीरं रयिं आ भर । हे सुक्रतो ! रक्षांसि जहि ॥

अर्थ— हे (जात-वेदः) सबके ज्ञाता ! हे (वि- चर्षणे) सर्वसाक्षी ईश्वर ! (सु-वीरं रयिं) उत्तम वीरोंसे युक्त धनको हमें (आ भर) दो और हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले ! (रक्षांसि जहि) दुष्टोंका नाश कर ।

भावार्थ— हे ज्ञानी सर्वसाक्षी ईश्वर ! हमें ऐसा धन दो कि जिसके

साथ उत्तम वीर रहें । तथा हे उत्तम कर्म करनेवाले ईश्वर ! क्रूर कर्म करनेवाले दुष्टोंको दूर कर ।

इस मंत्रमें ' सु-- वीरं रयिं आ भर ' ये शब्द--प्रयोग महत्त्व रखते हैं । धन ऐसी चाहिये कि जिसके साथ वीरता भी बसती हो। अर्थात् वीरता-के साथ जो धन रहता है वही सुरक्षित रहता है। जिस धनके साथ वीरता नहीं रहती वह सुरक्षित नहीं रहता । यह मंत्र बोध देता है कि अपने धनकी सुरक्षितताके लिये प्रत्येक मनुष्य अपनेमें वीरता बढावे । अशक्त मनुष्योंका धन कोई भी छीन सकता है।

(४)

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

(ऋग्वेद ६।४७।१२)

पदानि— इन्द्रः । सु--त्रामा । स्व--वान् । अवःऽभिः । सु--मृळीकः । भवतु । विश्व--वेदाः । बाधतां । द्वेषः । अभयं । कृणोतु । सु--वीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥

अन्वयः— सुत्रामा स्ववान् सुमृळीकः विश्ववेदाः इन्द्रः अवोभिः भवतु । द्वेषः बाधतां । अभयं कृणोतु । सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

अर्थ— (सु--त्रामा) उत्तम रक्षक, (स्व--वान्) आत्मिक शक्तिसे युक्त, (सुमृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला, (विश्व--वेदाः) सर्वज्ञ, (इन्द्रः) प्रभु अपनी (अवोभिः) संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारा सहायक (भवतु) होवे । वह (द्वेषः बाधतां) द्वेष करनेवालोंको दूर करे । (अभयं कृणोतु) हमें निर्भय करे । हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम शौर्यके स्वामी बनें ।

भावार्थ— परमेश्वर हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला है, उसमें विलक्षण आत्मिक शक्ति है, वही सबको सुख देनेवाला है और सर्वज्ञ भी वही है । वह अपनी रक्षक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करे, द्वेषभाव दूर करे,

हमें निर्भय करे । हम उसकी कृपासे शौर्य-धैर्य-वीर्यादि गुणोंके स्वामी बनें।

(५)

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥
(ऋग्वेद ६।४७।१३)

पदानि—तस्य । वयं । सु–मतौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम । सः । सु–त्रामा । स्व–वान् । इन्द्रः । अस्मे । आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोतु ॥

अन्वयः—तस्य यज्ञियस्य सुमतौ भद्रे सौमनसे च वयं स्याम । सः सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु ॥

अर्थ—(तस्य यज्ञियस्य) उस पूजनीय परमेश्वरकी (सुमतौ भद्रे सौमनसे च) सुमति और उत्तम मनके अंदर (वयं स्याम) रहेंगे। अर्थात् हम ऐसा आचरण करेंगे कि हमारे विषयमें उसका मन सदा प्रसन्न रहेगा । (सः) वह (सु-त्रामा) उत्तम रक्षक और (स्व–वान्) आत्म–शक्तिसे युक्त (इन्द्रः) प्रभु है, वह (अस्मे आरात् चित्) हमारे पाससे और दूरसे भी (द्वेषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको (सनुतः) अंदरही अंदरसे (युयोतु) नष्ट करे।

भावार्थ–परमेश्वर परम पूज्य है। हम ऐसा आचरण करेंगे कि उसका मन हमारे विषयमें सदा प्रसन्न रहेगा और उसकी दया हमपर बरसती रहेगी। वह प्रभुही हमारा उत्तम रक्षक, अप्रतिम आत्मिक बलसे युक्त और सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये हम उसकी प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देवे ।

सूचना

पाठक इस प्रकार पद, अन्वय, पदार्थ और भावार्थ स्वयं करनेका यत्न करें । यदि यत्न करनेपर न बना, तब उतनीही सहायता यहांके पद पदार्थोंसे लें । यदि पाठक इस प्रकार स्वावलंबन करते जायँगे तो उनकी वेदमंत्रोंका अर्थ बनानेमें बडी उन्नति होगी ।

पाठ ६

वैदिक स्वर।

भगवान् पाणिनि मुनिने अपने धातुपाठमें कबीर दो हजार धातु दिये हैं और ये धातु दस गणोंमें विभक्त किये हैं। इन धातुओंमें कौनसा धातु उदात्त और कौनसा अनुदात्त है, यह सब उन्होंने दे रखा है।

इसी प्रकार शब्दसिद्धिके प्रत्यय भी उदात्त, अनुदात्त या स्वरित, जैसे हैं वैसे बताये हैं।

धातु और प्रत्ययसे शब्द बनता है। इसलिये धातुका स्वर और प्रत्यय-का स्वर यदि विदित हुआ तो शब्दका स्वर समझमें आनेमें कोई रुका-वट नहीं हो सकती। बहुतसे स्वर इस रीतिसे स्वयं निश्चित हो जाते हैं। देखिये-

अग्+नि = अग्नि

वह्+नि = वह्नि

ये शब्द सिद्ध हुए। इनमें 'अग्' और 'वह्' ये दोनों धातु उदात्त हैं तथा 'नि' प्रत्यय भी उदात्तही है। अर्थात् यहां धातु और प्रत्यय भी उदात्तही हैं। इसलिये यह शब्द केवल उदात्तही होना चाहिये था, परन्तु यहां और एक नियम ऐसा है कि "प्रातिपदिक-शब्द-का अंत्य स्वर उदात्त रहता है।" इस नियमके अनुसार इन शब्दोंका अंतिम स्वर उदात्त रहा और 'अ॒ग्नि' 'व॒ह्नि' ये शब्द स्वरसहित इस प्रकार बन गये। यद्यपि इन शब्दोंके केवल पदस्थितिमें ये ऐसे स्वर होते हैं, तथापि जिस समय इनका प्रयोग मंत्रोंमें होता है उस समय भी आगे पीछेके शब्दोंके संबंधसे इन स्वरोंमें परिवर्तन हुआ करता है। इसी कारण शब्द मंत्रमें रहनेके समय उसका स्वर अन्य होता है और मंत्रके पद लिखनेके समय उसका स्वर अलग होता है। यह सब बात स्पष्ट रीतिसे दर्शानेके लिये एक मंत्र यहां लेते हैं-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥

(ऋग्वेद १।१।१)

यह ऋग्वेदका मंत्र है। अब इसके पद देखिये—

अग्निम् । ईळे । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् ।
ऋत्विजम् । होतारम् । रत्नऽधातमम् ॥

पाठक मंत्रके स्वर और पदोंके स्वरोंमें जो फरक हुआ है, वह यहां देखें। पदपाठके पदोंके स्वर मंत्रमें जानेपर बदलते हैं। इस विषयका विचार यह है—

१ 'अग्निं' शब्द पहिला है। उसका 'अग्' धातु उदात्त है, 'नि' प्रत्यय भी उदात्त है। परंतु उदात्त धातुके परे उदात्त प्रत्यय आनेसे शब्द 'अन्त्योदात्त' बन गया। अर्थात् पहिला स्वर अनुदात्त बना और अन्त्य स्वर उदात्त रहा और 'अग्निं' यह रूप बन गया।

२ 'ईळे' क्रियापद है, क्रियापद प्रायः अनुदात्तही होते हैं। इस नियम-को अपवाद भी हैं, उसका विचार पीछेसे किया जायगा।

३ 'पुरः हितम्' इस पदमें 'पु' अनुदात्त है, 'रः' उदात्त है, हि स्वरित है और 'त' अनुदात्त है। यह अनुदात्त होते हुए भी त अक्षरके नीचे रेषा नहीं है, इसका कारण यह है कि यह त स्वरित स्वरके पश्चात् आगया है आर बीचमें और कुछ भी नहीं है। इसका नियम यह है कि-"स्वरित स्वर के पश्चात् यदि अनुदात्त स्वर आगया, तो वह उदात्ततर किंवा सन्नतर कहलाता है और उसके लिये कोई चिन्ह नहीं होता।" इसका नाम एक-श्रुति भी होता है।

४ 'यज्ञस्य' इस पदमें 'य' और 'स्य' ये वस्तुतः अनुदात्त हैं, परंतु अनुदात्तका चिह्न य के नीचे है और स्य के नीचे वैसा चिह्न नहीं है।

" उदात्तके पीछे अनुदात्त आगया, तो वह स्वरित होता है । " इस नियमके अनुसार स्य स्वरित बन गया है ।

५ ' दे॒वम् ' शब्दमें दे अनुदात्त है और उसका चिह्न उसके नीचे है । व उदात्त है, उदात्तके लिये कोई चिह्न नहीं होता, यह पाठक जानते ही हैं ।

६ ' ऋ॒त्विज॑म् ' इसमें ' य॒ज्ञस्य॑ ' के अनुसारही समझना चाहिये । अर्थात् ऋ अनुदात्त ज भी अनुदात्त है, परंतु वह उदात्त त्वि के पीछे आनेसे स्वरित बन गया है ।

७ ' होता॑रम् ' इस पदमें हो उदात्त है, ता अनुदात्त है, परंतु वह उदात्त के पश्चात् आनेसे पूर्ववत् स्वरित बन गया है और उसके पीछेका र अनुदात्त है, परंतु यह अनुदात्तके पीछे आनेसे इसको अनुदात्ततर कहा जाता है ।

८ ' र॒त्न॒--धा--त॑मम् ' यह शब्द है । इसमें रत्न ये दो अनुदात्त हैं । धा उदात्त है । इस उदात्तके पश्चात् अनुदात्त त आगया है, इसलिये उदात्त के पीछे आनेवाला अनुदात्त स्वरित होता है, इस नियमके अनुसार वह त स्वरित हुआ है और उसके पश्चात्का म अनुदात्ततर हुआ, वास्तवमें यह अनदात्तही है ।

यहांतक पदोंके स्वरोंके विषयमें विवरण हुआ । यह विवरण पाठक वारंवार पढें और जबतक ठीक समझमें आ जावे तबतक मननपूर्वक पढते जायँ । ऐसा करनेसेही यह विषय ठीक समझमें आ सकता है । अब पुनः दृढीकरणार्थ स्वरोंके नियम यहां देते हैं—

१ स्वरोच्चारमें कालमर्यादाके न्यून और अधिक होनेसे स्वरके ' ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ' ये तीन भेद होते हैं ।

२ स्वरके आघातके भेदसे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये भेद होते हैं । उदात्तका आघात मुखके उच्च भागसें, अनुदात्तका नीचे भागमें और स्वरितका दोनों भागोंमें होता है ।

३ अनुदात्त स्वरका चिह्न अक्षरके नीचे रेषासे बताया जाता है। उदात्त के लिये कोई चिह्न नहीं है और स्वरितका चिह्न अक्षरके सिरपर खडी रेषासे बताया जाता है।

४ प्रायः शब्दमें एक स्वरको छोडकर शेष सब स्वर अनुदात्त होते हैं।

५ शब्दमें यदि एकही स्वर रहा तो वह प्रायः उदात्त होता है।

६ वेदके शब्द यौगिक हैं अर्थात् वे धातु और प्रत्यय लगकर बने हैं।

७ धातुके स्वर धातुपाठमें बताये हैं और प्रत्ययके स्वर व्याकरणमें बताये हैं। दोनोंके मेलसे शब्दका स्वर बहुत करके निश्चित होता है।

८ प्रायः पदका अन्त्य स्वर उदात्त रहता है।

९ साथ साथ दो स्वरित चिह्न (अर्थात् सिरपर खडी रेषाके चिह्न) कभी नहीं आते। अनुदात्तके चिह्न साथ साथ अधिक भी आते हैं।

१० उदात्तके परे उदात्त आनेसे अन्त्य उदात्त रहता है और पीछेका अनुदात्त बनता है।

११ सब क्रियापद प्रायः अनुदात्त होते हैं।

१२ स्वरितके परे अनुदात्त आगया तो उस अनुदात्तके लिये नीचे स्वर चिह्न नहीं लगाया जाता।

१३ उदात्तके पीछे अनुदात्त आगया, तो वह स्वरित बन जाता है।

इस समयतक इतने नियम दिये हैं। यह सब नियम विवरणके साथ और उदाहरणके साथ दिये हैं। इसलिये पाठक इनका मननपूर्वक अभ्यास करेंगे, तो यह स्वरकी बात उनके ध्यानमें आ जायगी। आशा है कि पाठक इसका अध्ययन विशेष प्रयत्नके साथ करेंगे।

पाठ ७

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये-

(१)

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ (ऋग्वेद. ७।१।१३)

पदानि–पाहि । नः । अग्ने । रक्षसः । अ-जुष्टात् । पाहि । धूर्तेः । अररुषः । अघ-आयोः । त्वा । युजा । पृतना-यून् । अभि । स्याम् ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि । अररुषः धूर्तेः अघायोः नः पाहि । त्वा युजा पृतनायून् अभि ष्याम् ॥

अर्थ–हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर ! (अजुष्टात्) हीन (रक्षसः) राक्षसोंसे (नः पाहि) हम सबकी रक्षा कर । (अ–ररुषः धूर्तेः) अनुदार धूर्त (अघ–आयोः) पापीसे हमारा (पाहि) बचाव कर । (त्वा युजा) तेरे साथ रहते हुए हम (पृतनायून्) सेना लेकर चढाई करनेवाले शत्रुका (अभि ष्याम्) हम पराभव करेंगे ।

भावार्थ—हे ईश्वर ! दुष्ट, दुर्जन, धूर्त, धोखेबाज, पापी, इस प्रकारके लोगोंसे हमारा बचाव कर । तेरी कृपा हमपर रही तो हम सब प्रकारके शत्रुओंका पराभव कर सकेंगे ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ (ऋ० ८।६१।१३)

पदानि–यतः । इन्द्र । भयामहे । ततः । नः । अभयं । कृधि । मघवन् । शग्धि । तव । तत् । नः । ऊतिभिः । वि । द्विषः । वि । मृधः । जहि ॥

अन्वयः–हे इन्द्र ! यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि । हे मघवन् ! शग्धि । तव ऊतिभिः नः द्विषः मृधः च वि वि जहि ॥

अर्थ–हे (इन्द्र) प्रभो ! (यतः भयामहे) जहांसे हमें भय होता

है (ततः) वहांसे (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) अभय कर । हे (मघवन्) धनसंपन्न प्रभो ! तू (शग्धि) शक्तिमान् हो इसलिये (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकी शक्तियों द्वारा (नः द्विषः) हमारे द्वेषकर्ताओंका तथा हमारे (मृधः) हिंसकका (वि वि जहि) विशेष पराभव कर ।

भावार्थ- हे परमेश्वर ! हमें निर्भय कर, किसी भी दिशासे हमें भय प्राप्त न हो । तू समर्थ है, इसलिये तेरी रक्षाकी शक्तियों द्वारा हम सुरक्षित हो गये तो हमें किसीसे भी भय नहीं हो सकता । क्योंकि तूही हमारे शत्रुओं, द्वेषकर्ताओं और हिंसकोंका नाश करेगा और तेरी रक्षासे सुरक्षित होकर हम सदा विजयी होते रहेंगे ।

(३)

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ (ऋ० ८।६१।१६)

पदानि— त्वं । नः । पश्चात् । अधरात् । उत्तरात् । पुरः । इन्द्रः । नि । पाहि । विश्वतः । आरे । अस्मत् । कृणुहि । दैव्यं । भयं । आरे । हेतीः । अदेवीः ॥

अन्वयः— हे इन्द्रः ! त्वं पश्चात्, अधरात्, उत्तरात्, पुरः (च) विश्वतः (च) नि पाहि । दैव्यं भयं अस्मत् आरे कृणुहि । अदेवीः हेतीः आरे ॥

अर्थ-- हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वं) तू (पश्चात्, अधरात्, उत्तरात्) पीछेसे, नीचेसे, ऊपरसे (पुनः विश्वतः च) आगेसे और सब ओरसे हमारी (नि पाहि) रक्षा कर । तथा (दैव्यं भयं) दैविक भयको (अस्मत् आरे) हम सबसे दूर (कृणुहि) कर, तथा (अदेवीः हेतीः) राक्षसी शस्त्र भी हम सबसे (आरे) दूर रहें ॥

भावार्थ— हे ईश्वर ! तू हम सबका सब ओरसे रक्षण कर, हमें सब ओरसे निर्भय बना । विद्युत्पात्, अवर्षण आदि दैवी आपत्ति हम सबसे दूर रहे और अन्य विपत्तियां भी हमसे दूर रहें ।

(४)

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥ (अथर्व० ६।४५।३)

पदानि– यत् । इन्द्र । ब्रह्मणस्पते । अपि । मृषा । चरामसि । प्रचेताः । नः । आंगिरसः । दुरितात् । पातु । अंहसः ॥

अन्वयः— हे इन्द्र ! ब्रह्मणस्पते ! यत् अपि मृषा चरामसि दुरितात् अंहसः प्रचेताः आंगिरसः नः पातु ॥

अर्थ– हे प्रभो, हे ज्ञानपते ! यदि हमने झूटा व्यवहार किया हो, तो उस पापसे ज्ञानी आंगिरस देव हमारी रक्षा करें ।

(५)

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ (ऋग्वेद १।२५।२०)

पदानि—त्वं । विश्वस्य । मेधिर । दिवः । च । ग्मः । च । राजसि । सः । यामनि । प्रति । श्रुधि ॥

अन्वयः—हे मेधिर ! त्वं विश्वस्य दिवः ग्मः च राजसि । स त्वं यामनि प्रति श्रुधि ॥

अर्थ—हे (मेधिर) बुद्धि-प्रदाता ईश्वर ! (त्वं) तू (विश्वस्य दिवः ग्मः च) सब द्युलोक और भूमिका (राजसि) राजा है । वह तू हमारी (यामनि प्रति श्रुधि) प्रार्थना श्रवण कर ।

भावार्थ—हे बुद्धिप्रदाता ईश्वर ! तूही संपूर्ण जगत्का सच्चा एक राजा है । वह तू हमारी प्रार्थना श्रवण कर ।

(६)

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः । (ऋ० १।२७।३)

पदानि—सः । नः । दूरात् । च । आसात् । च । नि । मर्त्यात् । अघायोः । पाहि । सदं । इत् । विश्व-आयुः ॥

अन्वयः—हे ईश्वर ! सः त्वं दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् विश्वायुः सदं इत् नः नि पाहि ॥

अर्थ–हे ईश्वर ! (सः त्वं) वह तू (दूरात् च आसात् च) दूरसे और पाससे (अघ—आयोः मर्त्यात्) पापी मनुष्यसे (विश्व-आयुः सदं इत्) सब आयुभरमें सदा सर्वदा (नः) हम सबकी (नि पाहि) रक्षा कर ।

(७)

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ (ऋ० ८।९८।११)

पदानि–त्वं । हि । नः । पिता । वसो । त्वं । माता । शत–क्रतो । बभूविथ । अधा । ते । सुम्नं । ईमहे ॥

अन्वयः–हे वसो शतक्रतो ! त्वं हि नः पिता च त्वं माता बभूविथ । अधा ते सुम्नं ईमहे ॥

अर्थ—हे (वसो) सबके निवासक (शतक्रतो) सैकडों सत्कृत्य करनेवाले ईश्वर ! (त्वं हि नः पिता) तूही हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू माता होता है । (अधा) इसलिये हम सब (ते सु-म्नं) तेरे उत्तम विचारको (ईमहे) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तूही हम सबका पिता और माता है, इसलिये तेरी दयाही हम चाहते हैं ।

सूचना

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके अर्थ लगानेका यत्न करें । इस ढंगसे प्रयत्न करनेसे उनकी मंत्रार्थ लगानेमें प्रगति शीघ्र हो सकती है । जहांतक हो सकता है वहांतक यत्न करके पाठक मंत्रोंको कण्ठ करनेका भी यत्न करें ।

पाठ ८

वैदिक स्वर

पूर्व पाठोंमें बहुतसा वैदिक स्वरोंका विचार हुआ है। प्रत्येक पदके स्वरका भी विचार किया है। अब वेही पद मंत्रमें किस प्रकार आगये और उनके स्वर किस कारण बदले हैं, इसका विचार करना है। देखिये वही मंत्र-

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ (ऋ० १।१।१)

१ इसमें पहिला 'अ' अनुदात्त है और उसका चिह्न उसके नीचे आया है।

२ दूसरा अक्षर 'ग्नि' उदात्त है, इसलिये उसके साथ कोई चिह्न नहीं है।

३ तीसरा अक्षर 'मी' है। यह वास्तवमें अनुदात्त है, परन्तु यह उदात्तके पश्चात् आगया है, इसलिये नियमानुसार स्वरित हुआ। (नियम १२ देखिये) इस नियमके अनुसार स्वरित होनेके कारण इसके सिरपर स्वरितका चिह्न खडी रेषा आगया है।

४ चतुर्थ अक्षर 'ळे' अथवा 'डे' अनुदात्त है, परंतु यह अनुदात्तके पश्चात् आया है, इसलिये इसको अनुदात्ततर कहते हैं। अनुदात्ततर होनेसे इसके लिये कोई चिह्न नहीं है।

५ पंचम अक्षर 'पु' अनुदात्त है और उसका चिह्न उसके नीचे है। यह अक्षर भी पूर्व नियमानुसार अनुदात्तके पीछे आनेके कारण अनुदात्ततर होना चाहिये था, परन्तु उसके परे 'रो' उदात्त आनेके कारण 'पु' अक्षर अनुदात्त ही रहा है।

६ छठां अक्षर 'रो' उदात्त है, इसलिये उसके साथ कोई चिह्न नहीं लगा।

७ सातवां अक्षर 'हि' पूर्ववत् स्वरित हुआ है, जिसका चिह्न उसके सिरपर खडा है।

८ आठवां अक्षर 'तं' पूर्ववत् अनुदात्ततर है। इसलिये उसके साथ कोई चिह्न नहीं है।

९ नवम अक्षर 'य' अनुदात्त है, जिसका चिह्न उसके नीचे है।

१० दशम अक्षर 'ज्ञ' उदात्त है, इसलिये उसका कोई चिह्न नहीं है।

११ ग्यारहवां अक्षर 'स्य' स्वरित है, उसका स्वरित चिह्न उसके सिरपर खडा है।

१२ बारहवां अक्षर 'दे' अनुदात्त है। 'स्य' स्वरितके आगे दे अनुदात्त आनेसे वास्तवमें वह अनुदात्ततर होना चाहिये था, परंतु उसके आगे उदात्त व आनेके कारण वह अनुदात्तही रहा और उसको अनुदात्तका चिह्न नीचे लगा है।

१३ तेहरवां अक्षर 'व' उदात्त है, इसलिये उसके साथ कोई चिह्न नहीं है।

१४ चौदहवां अक्षर 'मृ' अनुदात्त है; उदात्त 'व' के आगे आनेके कारण वह पूर्वोक्त 'स्य' के समान स्वरित होना चाहिये था। परंतु आगे उदात्त अक्षर 'त्वि' आनेके कारण स्वरित नहीं बना और अनुदात्त ही रहा, इसलिये उसके नीचे स्वर आगया है।

१५ पंद्रहवां अक्षर 'त्वि' उदात्त है। इस कारण उसके लिये कोई स्वर-चिह्न उसके साथ नहीं है।

१६ सोलहवां अक्षर 'ज' अनुदात्त है, परंतु वह उदात्तके पीछे आनेसे स्वरित चिह्न उसके सिरपर लग गया है।

१७ सतरहवां अक्षर 'हो' है। यह उदात्त है, इसलिये कोई चिह्न उसके साथ नहीं लगा।

१८ अठारहवां अक्षर 'ता' अनुदात्त है, परंतु यह उदात्तके पीछे आनेके कारण स्वरित बना है, जिस कारण उसके सिरपर स्वर लगा है।

१९ उन्नीसवां अक्षर 'र' अनुदात्त है, परंतु वह पूर्वोक्त प्रकार अनुदात्ततर हुआ है और इस कारण उसको कोई स्वरचिह्न नहीं लगा।

२० वीसवां 'र' भी इसी प्रकार अनुदात्ततर है।

२१ इक्कीसवां 'त्न' अनुदात्त है, आगे 'धा' उदात्त आनेके कारण इसके नीचे स्वरचिह्न लगा है।

२२ बाइसवां अक्षर 'धा' उदात्त है, इसलिये वह चिह्नरहित है।

२३ तेईसवां अक्षर 'त' पूर्वोक्त कारणही स्वरित बना और उसका चिह्न उसके सिरपर खडा है।

२४ चौवीसवां अक्षर 'म' पूर्वोक्त प्रकारही अनुदात्ततर है, इसकिये उसके साथ कोई स्वर-चिह्न नहीं लगा।

इस विवरणसे पाठकोंको पता लग जायगा कि स्वरित स्वर कहां बनता है और अनुदात्ततर कहां होता है।

समासमें स्वर

समासमें स्वरोंका कुछ हेरफेर होता है। इस विषयका सामान्य नियम ऐसा है-

१ पदमें एक स्वरको छोडकर सब अन्य स्वर अनुदात्त होते हैं। इसालिये समासमें संमिलित हुए पदोंके कैसे भी स्वर हुए तो भी उनका समास बननेपर उनमेंसे एकका ही उदात्त अवशिष्ट रहता है और शेष स्वर अनुदात्त होते हैं।

२ समासोंमें सामान्यतः नियम यह है कि अन्य समासोंमें उत्तरपद अपना स्वर स्थिर रखता है और पिछले पदके स्वर अनुदात्त होते हैं, तथा बहुव्रीहि समासमें ही पूर्वपद अपना स्वर स्थिर रखता है और पिछले पदोंके स्वर अनुदात्त बन जाते हैं।

३ तत्पुरुष समासोंमें भी प्रायः पूर्ववत् होता है।

४ कृदन्त और उत्तरपद समासोंमें भी पूर्वपदका उदात्त स्वर स्थिर रहता है और उत्तरपदका स्वर बदल जाता है।

पूर्वोक्त मंत्रमें 'पुरो-हितं' और 'रत्न-धा-तमं' ये पद समास हैं। पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार 'पुरः' शब्दका उदात्त बदला नहीं, परंतु 'हितं' पदही अनुदात्त रहा। वस्तुतः 'पुरः' और 'हितं' ये दोनों शब्द अन्तोदात्त हैं, तथापि पूर्वोक्त नियमके अनुसार पहिले पदका स्वर स्थिर रहा और दूसरे पदके सब स्वर अनुदात्त बने, परंतु उदात्तके पीछे अनुदात्त आनेसे 'हि' स्वरित चिह्नवाला बन गया।

'रत्न-धा-तमं' शब्दमें तीन भाग हैं। इसमें पहिला 'रत्न' शब्द आद्युदात्त है, परंतु आगे 'धा' धातु आनेसे और उपपदपूर्व तत्पुरुष समास बननेसे रत्नधा शब्द अन्तोदात्त बन गया और 'तम' प्रत्यय स्वयं अनुदात्त है, इसके त का पूर्व नियमके अनुसार स्वरित बन गया और म अनुदात्ततर हो गया। इसके नियम पहिले बतायेही हैं।

अब और नियम देखिये—

(१) संबोधनके शब्द तथा क्रियापदके शब्द वाक्योंमें प्रायः अनुदात्त रहते हैं। परंतु यदि ये वाक्यके या मंत्रपादके प्रारंभमें आगये तो उसके स्वर अन्य नियमानुसार हो जाते हैं।

(२) उदात्त और अनुदात्त स्वरोंके संधि होनेपर उदात्त स्वरकी प्रधानता रहती है। जैसा- 'आ+इहि' इसका संधि उदात्त स्वरयुक्त 'एहि' ऐसा होता है।

इस प्रकार सामान्य नियम हैं। पाठक यदि इनका विचार वारंवार मनन करके करेंगे तो उनको स्वरविषयक अत्यावश्यक ज्ञान प्राप्त होगा। यह विषय थोडा कठिन है, तथापि यहां अतिसुगम बनाकर लिख दिया है, वारंवार पढनेसे पाठकोंके समझमें आ जायगा।

पाठ ९

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अभ्यास कीजिये—

(१)

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ (ऋग्वेद १।२७।८)

पदानि—नकिः । अस्य । सहन्त्य । पर्येता । कयस्य । चित् । वाजः । अस्ति । श्रवाय्यः ॥

अन्वयः—हे सहन्त्य ! वाजः श्रवाय्यः अस्ति । अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः ॥

अर्थ—हे (सहन्त्य) बलवान् ईश्वर ! तेरा (वाजः) बल (श्रवाय्यः अस्ति) प्रशंसनीय है । (अस्य कयस्य चित्) इसका (पर्येता) उल्लंघन करनेवाला (नकिः) कोई भी नहीं है।

भावार्थ—परमेश्वर सब बलवानोंमें बलवान् है, इसलिये उसकी शक्ति प्रशंसाके योग्य है। इसको उल्लंघनेवाला अर्थात् इसकी शक्तिको दबानेवाला कोई नहीं है।

(२)

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥
(ऋग्वेद १। १००। १५)

पदानि—न । यस्य । देवाः । देवताः । न । मर्ताः । आपः । च । न । शवसः । अन्तं । आपुः । सः । प्ररिक्वा । त्वक्षसा । क्ष्मः । दिवः । च । मरुत्वान् । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ॥

अन्वयः—यस्य शवसः अन्तं देवाः देवताः न, मर्ताः न, आपः च न आपुः, स मरुत्वान् इन्द्रः दिवः क्ष्मः च त्वक्षसा प्ररिक्वा नः ऊती भवतु ॥

❀

अर्थ— (यस्य शवसः) जिस ईश्वरके बलका (अन्तं) अन्त देव या देवता (न) नहीं प्राप्त कर सकते, (मर्ताः न) मनुष्य भी नहीं प्राप्त कर सकते, तथा (आपः च न आपुः) जल भी नहीं प्राप्त कर सकते । (सः सत्त्वान् इन्द्रः) वह प्राण-शक्तिसे युक्त इन्द्र (दिवः क्ष्मः च) द्युलोक और पृथ्वी लोकको (त्वक्षसा प्ररिक्वा) बलसे पूरित करनेवाला ईश्वर (नः ऊती भवतु) हम सबका रक्षण करनेवाला हो ।

भावार्थ—परमेश्वरकी शक्ति इतनी अगाध है कि उस शक्तिका अंत कोई देव, देवता, मनुष्य या अन्य कोई भी नहीं पा सकता । वह जीवन-शक्तिसे परिपूर्ण ईश्वर जोकि द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपनी शक्तिसे परिपूर्ण कर रहा है, वह हम सबकी उत्तम रक्षा करें ।

(३)

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे
महिमा पृथिव्याः । नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति
न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ (ऋग्वेद ६।१८।१२)

पदानि-प्र । तुवि-द्यु-म्नस्य । स्थविरस्य । घृष्वेः । दिवः । ररप्शे । महिमा। पृथिव्याः । न । अस्य । शत्रुः । न । प्रतिमानम् । अस्ति । न । प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य । सह्योः ॥

अन्वयः— तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा दिवः पृथिव्याः ररप्शे । न अस्य शत्रुः । न प्रतिमानं अस्ति । पुरुमायस्य सह्योः प्रतिष्ठि न।

अर्थ- (तुवि-द्युम्नस्य) अत्यंत तेजस्वी (स्थविरस्य) स्थिर अथवा पुराण पुरुष और (घृष्वेः) दुष्टताको पीसनेवाले ईश्वरकी (महिमा महिमा (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवी–लोकके भी (प्र ररप्शे) बाहर फैला है । (न अस्य शत्रुः) इसका कोई शत्रु नहीं है, (न अस्य प्रतिमानं) न इसकी कोई प्रतिमा या उपमा है । इस (पुरु-मायस्य)

अनंत प्रज्ञावाले और (सहोः) शक्तिवाले ईश्वरके लिये भी कोई दूसरा (प्रतिष्ठिः न) आधार नहीं है अर्थात् वही सबका आधार है ।

भावार्थ—ईश्वर अत्यंत तेजस्वी, दुष्टताका नाश करनेवाला और बडा पुराण पुरुष है। उसकी महिमा सब जगत्‌में फैली है। इसका कोई शत्रु नहीं और नाही इसकी कोई उपमा है। इस अनंत शक्तिवाले ईश्वरको छोडकर और कोई दूसरा आधार किसीको नहीं है।

(४)

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ (ऋग्वेद १।१।९)

पदानि—सः । नः । पिता । इव । सूनवे । अग्ने । सु-उपायनः । भव । सचस्व । नः । स्वस्तये ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! सः त्वं सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव । नः स्वस्तये सचस्व ॥

अर्थ-हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (सूनवे पिता इव) पुत्रके लिये पिताके समान (नः) हम सबके लिये (सु-उपायनः) उत्तम प्राप्त होनेवाला (भव) हो। (नः) हम सबकी (स्वस्तये) कल्याणके लिये (सचस्व) हमारे साथ रहो ।

भावार्थ-हे प्रकाश देनेवाले प्रभो ! जैसा पिता पुत्रका सहायक होता है वैसा तू हम सबका सहायक हो और हमारा कल्याण करनेके लिये हमें सहायक हो ।

(५)

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये ।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥ (ऋग्वेद १।२६।३)

पदानि—आ । हि । स्म । सूनवे । पिता । आपिः । यजति । आपये । सखा । सख्ये । वरेण्यः ।

अन्वय और अर्थ-जिस प्रकार (पिता। सूनवे) पिता पुत्रके लिये, । (आपिः आपये) बंधु बंधुके लिये तथा (वरेण्यः सखा सख्ये) श्रेष्ट

मित्र मित्रके लिये (आ यजति स्म) सहायता करता है, उस प्रकार हे ईश्वर ! तू हमारी सहायता कर ॥

भावार्थ–जैसा पिता पुत्रकी, भाई भाईकी और मित्र मित्रकी सहायता करता है, उस प्रकार ईश्वर हमारी सहायता करे ।

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पिताऽसि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य॥

(ऋग्वेद १।३१।१०)

पदानि—त्वं । अग्ने । प्रमतिः । त्वं । पिता । असि । नः । त्वं । वयस्कृत् । तव । जामयः । वयम् । सं । त्वा । रायः । शतिनः । सहस्रिणः । सुवीरं । यन्ति । व्रतपां । अदाभ्य ।

अन्वयः–हे अग्ने ! त्वं प्रमतिः, त्वं नः पिता असि । त्वं वयस्कृत् । वयं तव जामयः । हे अदाभ्य ! सुवीरं व्रतपां त्वा शतिनः सहस्रिणः रायः सं यन्ति ।

अर्थ— हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले ईश्वर ! तू (प्रमतिः) विशेष बुद्धिमान् हो, तू हम सबका पिता है । तूहि (वयः कृत्) जीवन देनेवाला है । (वयं) हम सब (तव) तेरे (जामयः) बंधु हैं । हे (अदाभ्य) न दबनेवाले ईश्वर ! (सुवीरं व्रतपां) उत्तम वीरोंसे युक्त नियमोंके पालक तुझ ईश्वरके प्रति सौ और सहस्रों (रायः) धन (सं यन्ति) इकट्ठे होते हैं ।

भावार्थ— हे ईश्वर ! तूही सबमें अत्यंत बुद्धिमान् हो, तूही हम सबका पिता हो और तूही सबको जीवन देनेवाला हो । तेरेही हम सब भाई हैं । हे न दब जानेवाले ईश्वर ! तू अनेक वीरताके गुणोंसे युक्त तथा उत्तम नियमोंके चलानेवाले हो, इसलिये सैकडों धन तेरे पास इकट्ठे होते हैं । अर्थात् जो इस प्रकार उत्तम नियमोंका पालनकर्ता और वीरताके गुणोंसे युक्त होगा, वह भी अनेक धनोंको अपने पास धारण कर सकेगा और धनी बन जायगा ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अध्ययन करें ।

पाठ १०

(१)

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः॥ (ऋग्वेद १।८।४)

अन्वयः – वयं त्वया युजा अस्तृभिः शूरेभिः (च सह) वयं पृतन्यतः सासह्याम ॥

अर्थ– हम सब तेरे (युजा) साथ और (अस्तृभिः) अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले (शूरेभिः) शूर वीरोंके साथ हम (पृतन्यतः) सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका (सासह्याम)पराभव करेंगे॥

भावार्थ– हे ईश्वर! तेरी सहायता लेकर तथा शूर वीरोंकी सहायता लेकर हम शत्रुका पराजय करेंगे।

(२)

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥
(ऋग्वेद १।१०२।४)

अन्वय और अर्थ—हे(मघवन्) धनैश्वर्यसंपन्न प्रभो! (त्वया युजा) तेरे साथ युक्त होकर (वयं वृतं जयेम) हम सब घेरनेवाले शत्रुका पराभव करेंगे। (भरे भरे) हरएक प्रकारके युद्धमें (अस्माकं अंशं) हमारे भागका (उदव)उत्तम रक्षण कर। हे (इन्द्र) प्रभो! (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (वरिवः सुगं कृधि) धन सुखसे प्राप्त होनेयोग्य कर। (शत्रूणां वृष्ण्या) शत्रुओंके बल (प्र रुज)नष्टभ्रष्ट कर।

भावार्थ– हे प्रभो! तेरी कृपा प्राप्त करके हम सब प्रकारके शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे। हे ईश्वर! हरएक प्रकारके युद्धमें हमारा कर्तव्यका भाग हमसे ठीक प्रकार हो जावे, ऐसी उन्नति हमारी हो जावे। हे देव! हमें सब प्रकारके धन सुगमतासे प्राप्त हों और तेरी प्रेरणासे हमारे शत्रुओंके बल पूर्णतासे नष्टभ्रष्ट कर और सदा हमारा विजय हो।

(३)

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः। अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम॥ (ऋग्वेद २।११।१२)

अन्वय और अर्थ—हे (इन्द्र) प्रभो! हम सब (विप्राः) ज्ञानी लोग (त्वे अभूम) तेरे अंदर अर्थात् तेरे होकर रहेंगे। (ऋतया सपन्तः) सीधे मार्गसे व्यवहार करते हुए (धियं वनेम) बुद्धि और कर्मकी सिद्धि प्राप्त करेंगे। हम सब (अवस्यवः) अपनी रक्षा करनेका यत्न करनेवाले लोग (प्रशस्तिं धीमहि) तेरे गुणोंको मनमें धारण करेंगे। (सद्यः) तत्काल ही (ते रायः) तेरे धनके (दावने) दानके लिये हम योग्य (स्याम) होंगे॥

भावार्थ—हे ईश्वर! हम सब लोग तेरे बनकर रहेंगे और सीधे मार्गसे चलकर कर्मकी सिद्धि प्राप्त करेंगे। हम सब अपनी रक्षा करनेका पुरुषार्थ करेंगे और सदा तेरे शुभ गुणोंका ध्यान करेंगे। ऐसा करनेसे हम सब तेरे धनके दानके भागी बन जायँगे।

(४)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥ (ऋग्वेद २।१२।१)

अन्वय तथा अर्थ—(यः प्रथमः देवः) जो आदि देव (जातः एव) प्रकट होतेही (मनस्वान्) मनन-शक्तिसे श्रेष्ठ होकर अपने (क्रतुना) कर्मसे (देवान् पर्यभूषत्) देवोंको शोभायुक्त करता रहा। (यस्य शुष्मात्) जिसके बलसे (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी—लोक (अभ्यसेतां) कांपती हैं (सः) वही देव है, (जनासः) लोगो! वही (नृम्णस्य मह्ना) मानसिक शक्तिके महत्त्वसे युक्त (इन्द्रः) प्रभु है।

भावार्थ-आदिदेव परमेश्वर पहलेसेही महती मानस-शक्तिसे युक्त है और अपने प्रशंसनीय कर्मसे संपूर्ण देवताओंको सुशोभित करता है। इसका फल इतना है कि उनके भयसे द्यावापृथिवी भी कांपते हैं। हे लोगो ! यही सब जगत्का एक प्रभु है। और वही सबसे अधिक समर्थ है।

(५)

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥

(ऋ० २।१२।९)

अन्वय और अर्थ-हे (जनासः) लोगो ! (यस्मात् ऋते) जिसके विना (जनासः न विजयन्ते) लोग विजय प्राप्त नहीं कर सकते, (युध्यमानाः) लडते हुए (अवसे) रक्षाके लिये (यं हवन्ते) जिसकी प्रार्थना करते हैं और (यः) जो (विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) विश्वका नमूना हुआ है तथा जो (अ-च्युत—च्युत) न हिलनेवालोंको भी हिला देनेकी शक्ति रखता है, वही इन्द्र है।

भावार्थ—परमेश्वरकी कृपा न हुई तो लोगोंका कभी विजय नहीं हो सकता, इसलिये युद्धके समय सब लोग उसी की प्रार्थना मनोभावनासे करते हैं। जो प्रभु जगत् बननेके लिये आदर्शरूप हुआ, वह इतना समर्थ है कि वह बडे प्रभावशालियोंको भी हिला देता है, परंतु उसको हिला नेवाला कोई नहीं है॥

(६)

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥

(ऋ० ६।८।६)

अन्वय और अर्थ- हे (वैश्वानर अग्ने) विश्वके संचालक प्रकाश देनेवाले देव ! (अस्माकं मघवत्सु) हमारे धनिकोंमें (सु-वीर्यं) उत्तम वीरतासे युक्त (अ—नामि) कभी नम्र न होनेवाला (अ-जरं क्षत्रं)

कभी क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज (धारय) धारण कर । (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षा—शक्तियोंसे (वाजं) बल प्राप्त करके (वयं) हम सब (शातिनं सहस्रिणं) सौ और हजारों सैनिकोंके साथ हमला करनेवाले शत्रुको (जयेम) पराजित करेंगे ।

भावार्थ—हे जगत्के संचालक प्रभु ! हमारेमें जो धनी हैं, उनमें उत्तम शौर्य, वीर्य, धैर्य, स्थापन कर अर्थात् धनी लोग शूर हों और डरपोक न हों, कभी किसीसे वे न डरें और अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हों । तेरी रक्षाओंसे सुरक्षित होकरही हम बडे बलवान् बनेंगे और सैन्यके साथ हमपर हमला करनेवाले शत्रुओंको भी परास्त करेंगे ।

(७)

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ (ऋग्वेद १।११।२)

अर्थ—हे (शवसः पते इन्द्र) बलके स्वामी प्रभो ! (ते सख्ये) तेरी मित्रतामें हम (वाजिनः) बलवान् होनेके कारण (मा भेम) किसीसे भी नहीं डरते । तू (जेतारं) विजयी और (अ-पराजितं) कभी पराजित न होनेवाला है, इसलिये (त्वां अभि प्र णोनुमः) तुझेही नमन करते हैं ।

भावार्थ—हे सर्व-समर्थ प्रभो ! तेरी मित्रतासे हम बलशाली होनेके कारण हम किसीसे नहीं डरेंगे । क्योंकि तू सदा विजयी हो और तुम्हारा पराजय कभी नहीं होता । इसलिये हम तेरी ही शरणमें आते हैं, तेरीही भक्ति करते हैं और तुझे छोडकर किसी अन्यकी उपासना नहीं करते ।

सूचना ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अर्थ करें, हरएक मंत्र कण्ठ करें और उसके पद, पदार्थ, अन्वय और भावार्थ स्वयं करनेका यत्न करें । जहां समझमें न आवे वहाँ ऊपर दिये अर्थकी सहायता लें । इस प्रकार करनेसे उनकी प्रगति वेदविद्यामें शीघ्र होगी ।



पाठ ११

(म० भा० द्रोणपर्व अ० ३६)

सञ्जय उवाच।

सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥
तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥
अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥
आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चायुद्धविशारदः ॥ ४ ॥
ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत्।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥
ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम् ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच-- हे भारत ! धीमतो बुद्धिमतो धर्मराजस्य तद्वचः तद्वचनं श्रुत्वा सौभद्रः सुभद्रापुत्रः यंतारं सारथिनं द्रोणानीकाय द्रोणस्य सैन्याय अचोदयत प्रेरितवान् ॥ १ ॥ तेन द्रौपदीपुत्रेण अभिमन्युना 'याहि याहि' गच्छ गच्छ इति सञ्चोद्यमानः संप्रेर्यमाणः सारथिस्तु, हे राजन् ! ततः तदनंतरं इदं वचः इदं वचनं अभिमन्युं प्रत्युवाच ॥ २ ॥ हे आयुष्मन् अभिमन्यो ! पाण्डवैस्त्वयि अयं अतिभारः आहितः स्थापितः। बुद्ध्या क्षणं संप्रधार्य विचार्य ततः तदनंतरं त्वं योद्धुं अर्हसि ॥ ३ ॥ हि आचार्यः द्रोणः कृती कृतकार्यः परमास्त्रे च कृतश्रमः। त्वं च अयुद्धविशारदः न युद्धविशारदः अत्यंतसुखसंवृद्धः च ॥ ४ ॥ ततोऽभिमन्युः प्रहसन् सारथिं इदं वाक्यं अब्रवीत्। हे सारथे ! को नु अयं द्रोण ? समग्रं संपूर्णं क्षात्रं क्षत्रियबलं वा ॥ ५ ॥ ऐरावतगतं अमरगणैः सह शक्रं इन्द्रं वा ॥ ६ ॥

अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ।
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ७ ॥
न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ॥ ८ ॥
अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ।
पितरं चार्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति ॥ ९ ॥
अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ।
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ॥ १० ॥
ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ।
नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ॥ १२ ॥
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ।
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगा महाबलाः ॥ १३ ॥
तमुदीक्ष्य तथायान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ १४ ॥
ते विंशतिपदे यत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गांग इवावर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १ ॥

अथवा सर्वभूतगणार्चितं सर्वभूतसुपूजितं ईशानं रुद्रं वा रणमुखे योधयेयम् । अद्य क्षत्रे मे विस्मयो न ॥ ७ ॥ एतत् द्विषत्सैन्यं शत्रुसैन्यं मम षोडशीं कलां न अर्हति ॥ ८ ॥ हे सूतज ! मातुलं विश्वजितं विष्णुं प्राप्य अपि पितरं अर्जुनं चापि प्राप्य मां भीः न उपयास्यति ॥ ९ ॥ अभिमन्युः च तां सारथेः वाचं कदर्थीकृत्य ' द्रोणानीकाय याहि, मा चिरं ' इत्येव एनं अब्रवीत् ॥ १० ॥ ततः अतिहृष्टमना सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् सुवर्णालंकारयुक्तान् त्रिहायनान् त्रिवर्षीयान् हयान् अश्वान् आशु संनोदयामास ॥ १२ ॥ सुमित्रेण सारथिना द्रोणानीकाय प्रेषितास्ते वाजिनः अश्वाः हे राजन् ! महावेगा महाबलाः द्रोणं अभ्यद्रवन् ॥ १३ ॥ तथायान्तं तं अभिमन्युं उदीक्ष्य दृष्ट्वा, सर्वे द्रोणपुरोगमाः तं अभ्यवर्तन्त, पाण्डवाश्च तं अन्वयुः ॥ १४ ॥ ते विंशतिपदे यत्ताः संयत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे । उदधौ समुद्रे गांगः आवर्त इव मुहूर्तं आसीत् ॥ १६ ॥

शूराणां युद्ध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १७ ॥
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा व्यचरदार्जुनिः ॥ १८ ॥
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ २० ॥
नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः ।
हुंकारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ २१ ॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा गास्तिष्ठैहि मामिति ।
असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥
बृंहितैः शिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
संनादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ २३ ॥
तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २४ ॥
ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २५ ॥

शूराणां युद्ध्यमानानां इतरेतरं निघ्नतां, हे राजन् ! सुदारुणः तुमुलः संग्रामः प्रावर्तत ॥१७॥ तस्मिन् अतिभयंकरे संग्रामे प्रवर्तमाने द्रोणस्य मिषतः पश्यत एव आर्जुनिः अभिमन्युः व्यूहं भित्त्वा व्यचरत्, अभ्यन्तरं प्राविशत् ॥१८॥ तं महाबलं व्यूहमध्ये प्रविष्टं शत्रुसंघान् विनिघ्नन्तं उदायुधाः उद्यतायुधाः हस्त्यश्वरथपत्त्योघाः परिवव्रुः परितः वव्रुः ॥२०॥ नानावादित्रनिःस्वनैः क्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः गमनैः हुंकारैः सिंहनादैः च "तिष्ठ तिष्ठ" इति निःस्वनैः ॥२१॥ घोरैः हलहलाशब्दैः "मा गाः, तिष्ठ, मां एहि, अमित्र ! असौ अहं" इति मुहुः मुहुः वारंवारं प्रवदन्तः ॥२२॥ बृंहितैः शिंजितैः हासैः करनेमिस्वनैरपि वसुधां संनादयन्तः आर्जुनिं अभिदुद्रुवुः ॥२३॥ शीघ्रयोधी महाबलो वीरः क्षिप्रास्त्रः अभिमन्युः। हे राजन् ! युद्धमर्मज्ञः अभिमन्युः मर्मभेदिभिः नानालिंगैः शरैः आपततां तेषां न्यवधीत् ॥२४॥ नानालिंगैः शितैः शरैः विवशाः हन्यमानास्ते वीराः पावकं शलभा इव सुबहुशः अभिपेतुः ॥२५॥

पाठ १२

चाणक्य-सूत्राणि।

१ धर्मेण धार्यते लोकः-धर्मसे सब लोकोंका धारण होता है।

२ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः—मरनेपर भी धर्म और अधर्म मनुष्यके पीछे जाते हैं।

३ दया धर्मस्य जन्मभूमिः-दया धर्मकी जन्मभूमी है। दयासे धर्मकी उत्पत्ति होती है।

४ धर्ममूले सत्यदाने-सत्य और दान धर्मसे उत्पन्न होते हैं।

५ धर्मेण जयति लोकान्-धर्मसे सब लोकोंको जीत सकते हैं।

६ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति-मृत्यु भी धार्मिक मानवकी सुरक्षा करता है।

७ धर्माद्विपरीतं पापं यत्रयत्र प्रसज्यते, तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते-धर्मके विरुद्ध पाप जहां जहां फैलता है, वहां धर्मके विषयमें निरादर भी फैलता है।

८ उपस्थितविनाशानां प्रकृतिकारेण लक्ष्यते-जिनका नाश समीप आया है उसका बोध उनकी प्रकृतिसे ही विदित हो जाता है। (उनके आचार व्यवहारसे विदित होता है कि इनका नाश शीघ्र होनेवाला है।)

९ आत्मनाशं सूचयति अधर्मबुद्धिः—अधर्म की बुद्धि अपना नाश समीप आया है इसकी सूचना देती।

१० पिशुनवादिनोऽरहस्यम्-चुगली करनेवालेके पास कुछ भी बात गुह्य नहीं रह सकती।

११ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम्--दूसरेकी गुप्त बात कभी सुननी नहीं चाहिये।

१२ वल्लभस्य कारकत्वं अधर्मयुक्तम्--राजाके प्रेममें रहनेवालों

की प्रेरणा अधर्मयुक्त होती है।

१३ स्वजनेषु अतिक्रमो नैव कर्तव्यः--स्वजनोंका अपमान कदापि करना नहीं चाहिये।

१४ माताऽपि दुष्टा त्याज्या—माता दुष्ट हुई तो उसका त्याग करना योग्य है।

१५ स्वहस्तोऽपि विषदिग्धश्छेद्यः-अपना हाथ भी विषबाधा होनेपर काटने योग्य होता है।

१६ परोऽपि च हिता बन्धुः-- परकीय मनुष्य हितकारी होनेपर भाई मानने योग्य है।

१७ कक्षादप्यौषधं गृह्यते--घाससे भी औषधि ली जाती है।

१८ नास्ति चोरेषु विश्वासः-चोरोंपर विश्वास रखना नहीं चाहिये।

१९ अप्रतिकारेष्वनादरो न कर्तव्यः-- जो प्रतिकार नहीं करते उनका निरादर करना योग्य नहीं है।

२० व्यसनं मनागपि बाधते--व्यसन अल्प होनेपर भी बाधा करते है।

२१ अमरवद् अर्थजातं अर्जयेत्—अमर हूँ ऐसा मानकर ऐश्वर्य प्राप्त करते रहना चाहिये।

२२ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः—ऐश्वर्यवान् को सब मान देते हैं।

२३ महेन्द्रमपि अर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः--इन्द्र भी यदी ऐश्वर्यहीन हो जाय, तो उसका कोई मान नहीं करता।

२४ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम्-दारिद्र्य मनुष्यके लिये जीवितदशामें मरण के समान है।

२५ विरूपोऽअर्थवान् सुरूपः- ऐश्वर्यवाला पुरुष कुरूप होनेपर सुरूप माना जाता है।

२६ अदातारमपि अर्थवन्तं अर्थिनो न त्यजन्ति—धनवान् पुरुष कंजूस होनेपर भी उसका त्याग याचक नहीं करते ।

२७ अकुलीनोऽपि कुलीनाद्विशिष्टः—ऐश्वर्यवान् मनुष्य कुलहीन होनेपर भी कुलीनसे भी श्रेष्ठ माना जाता है।

२८ नास्ति अमानभयं अनार्यस्य—अनार्यको अपमानका भय नहीं होता

२९ न चेतनवतां वृत्तिभयम्—जो चैतन्य (ज्ञान) युक्त होते हैं उनको आजीविका भय नहीं होता।

३० न जितेन्द्रियाणां विषयभयम्—संयमी मनुष्योंको विषयोंका भय नहीं होता।

३१ न कृतार्थानां मरणभयम्—जो कृतार्थ हुआ उनको मरणका भय नहीं होता।

३२ कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः—किसीका भी कल्याण हुआ तो वह अपना ही कल्याण है ऐसा साधु मानते है।

३३ परविभवेषु आदरो न कर्तव्यः—दूसरेके धनपर कभी इच्छा नहीं रखनी चाहिये।

३४ परविभवेषु आदरो नाशमूलम्—दूसरेके धनपर दृष्टि रखना यह नाश का कारण हैं।

३५ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम्—घासका तिनका भी दूसरेका नहीं हरण करना चाहिये।

३६ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः— परद्रव्यका अपहार करना अपने द्रव्यके नाश होनेका कारण होता है।

३७ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः—चोरीसे भिन्न दूसरा मृत्युपाश नहीं है।

३८ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले—अन्नका पानी भी समय पर प्राणधारण करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस ' पुरुषार्थबोधिनी ' भाषाटीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद आदि प्राचीन ग्रंथोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं । अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस ' पुरुषार्थबोधिनी ' टीकाका मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है ।

गीता-के १८ अध्याय ३ भागोंमें विभाजित किये हैं और एकही जिल्दमें बांधे हैं । इसका मू. १०) रु. और डाकव्यय १॥) रु. है । लेकिन मनीआर्डरसे ११।) रु. भेजनेवालोंको हमारे अपने व्ययसे भेज देंगे । प्रत्येक अध्यायका मू० ॥।) और डा० व्यय ।-) है ।

श्रीमद्भगवद्गीता-समन्वय ।

' वैदिक धर्म ' के आकारके १३६ पृष्ठ, चिकना कागज, सजिल्दका मू० २) रु०, डा० व्य० ।=) डा० व्यय सहित मूल्य भेज दीजिये ।

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीगीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है । मूल्य केवल ॥।) डा० व्य० ।=)

भगवद्गीता--लेखमाला ।

' गीता ' मासिकके प्रकाशित गीताविषयक लेखोंका यह संग्रह है । इसके १,२,६,७भाग तैयार हैं, जिनका मू० ५) रु० और डा० व्यय १।) है ।

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (जि० सूरत)